उपभोक्तावाद की संस्कृति

पाठ का सार

हमारी जीवन-शैली धीरे-धीरे बदल रही है। इसमें उपभोक्तावाद बढ़ता जा रहा है। अधिकाधिक मात्रा में उत्पादन बढ़ रहा है। जन-समुदाय उत्पादोंत्र को भोजन समझकर भोग रहा है। परंतु मनुष्य स्वयं ही उत्पादों की भेंट चढ़ता जा रहा है।

बाजार में विलासिता की सामग्री की बहुलता है। मनुष्य को लुभाने के लिए विज्ञापन जी-जान एक कर रहे हैं। चाहे खाद्य सामग्री हो, चाहे दैनिक उपयोग की वस्तुएँ हों या प्रसाध्न-सामग्री, विज्ञापन उनकी विशेषताएँ बताकर मानव समुदाय को तरह-तरह से आकर्षित कर रहे हैं। विज्ञापन फिल्मी सितारों एवं ट्टषि-मुनियों का भी हवाला देने से नहीं चूकते। सौंदर्य-प्रसाध्नों की तो होड़ लग गई है। संभ्रांत परिवारों की महिलाएँ अपनी ड्रेसिंग टेबल पर तीस-तीस हजार रुपये की सौंदर्य-सामग्री रखे ही रहती हैं। अब पुरुष भी पीछे नहीं हैं, वे भी कीमती साबुन, तेल, आॅफ्रटर-शेव और कोलोन लगाने लगे हैं। जगह-जगह फेशनेबल एवं नए-नए डिशाइन के वस्त्रों के लिए बड़े-बड़े वस्त्रालय एवं बुटीक खुल गए हैं।

आजकल लोग आवश्यकता के लिए नहीं बल्कि दिखावे के लिए वस्तुएँ अध्कि खरीदते हैं। म्यूशिक सिस्टम, कंप्यूटर, मोटर साइकिल तथा कार आदि शौक तथा दिखावे की चीजों हो गई हैं। इसके साथ ही अधिक ध्नी लोग तो बच्चों की पढ़ाई के लिए पंचसितारा विद्यालय, खुद के इलाज के लिए पंचसितारा हाॅस्पिटल, खाना खाने के लिए पंचसितारा होटल में ही जाते हैं क्योंकि यह उनके स्तर के अनुरूप होता है। अमरीका में तो लोग मरने के बाद बनने वाली समाधि को सजाने के लिए भी पैसा खर्च करने लगे हैं।
उपभोक्तावादी समाज अपना स्तर दिखाता है कतु सामान्य समाज ललचाई निगाहों से देखता रहता है। उपभोक्तावाद का प्रसार सामंती संस्कृति की देन है। जो आज भी भारत में मौजूद है। सामंत बदल गए कतु सामंती पहले जैसी ही फल-फूल रही है। हमारी सांस्कृतिक पहचान नष्ट हो रही है, परंपराएँ खत्म हो रही हैं और आस्था का नाम ही खत्म हो गया है। हम पश्चिमी सभ्यता का अंधानुकरण कर झूठी आधुनिकता में मदहोश हैं। दिग्भ्रमित होकर अपना उद्देश्य भूल गए हैं।

इस तरह की संस्कृति को अपनाने के कारण संसाधनों एवं धन, दोनों का अपव्यय हो रहा है। सामाजिक संबंध् बिगड़ रहे हैं। आपस में दूरियाँ बढ़ रही हैं। आक्रोश एवं अशांति बढ़ रही है। हमारी सांस्कृतिक पहचान नष्ट हो रही है। झूठे विकास के लालच में हम सच्चे विकास को भूल गए। अपना उद्देश्य भूल गए। मनुष्य महत्वाकांक्षी एवं उसका जीवन व्यक्ति केद्रित हो गया है।

गांधी जी ने कहा था, ‘‘हम स्वस्थ सांस्कृतिक प्रभावों के लिए अपने दरवाजो खिड़कियाँ अवश्य खुले रखें किंतु अपनी बुनियाद पर कायम रहें। उपभोक्तावादी संस्कृति हमारी सामाजिक नींव को हिला रही है। यह एक बड़ा खतरा है। भविष्य के लिए यह एक बड़ी चुनौती है।

लेखक परिचय

शयामचरण दुबे

इनका जन्म सन 1922 में मध्य प्रदेश के बुंदेलखंड क्षेत्र में हुआ। उन्होंने नागपुर विश्वविधालय से से मानव विज्ञान में पीएचडी की। वे भारत के अग्रणी समाज वैज्ञानिक रहे हैं। इनका देहांत सन 1996 में हुआ

प्रमुख कार्य

पुस्तकें - मानव और संस्कृति, परम्परा और इतिहास बोध, संस्कृति तथा शिक्षा, समाज और भविष्य, भारतीय ग्राम, संक्रमण की पीड़ा, विकास का समाजशास्त्र और समय और संस्कृति।

कठिन शब्दों के अर्थ

1. शैली - ढंग
2. वर्चस्व - प्रधानता
3. विज्ञापित - सूचित
4. अनंत - जिसका अंत न हो
5. सौंदर्य प्रसाधन - सुंदरता बढ़ाने वाली सामग्री
6. परिधान - वस्त्र
7. अस्मिता - पहचान
8. अवमूल्यन - मूल्य में गिरावट
9. क्षरण - नाश
10. उपनिवेश - वह विजित देश जिसमे विजेता राष्ट्र के लोग आकर बस गए हों।
11. प्रतिमान - मानदंड
12. प्रतिस्पर्धा - होड़
13. छद्म - बनावटी
14. दिग्भ्रमित - दिशाहीन
15. वशीकरण - वश में करना
16. अपव्यय - फिजूलखर्ची
17. तात्कालिक - उसी समय का
18. परमार्थ - दूसरों की भलाई।